तत्काल सस्ते, और निष्पक्ष न्याय के लिए

वाई० वी० चन्द्रचूड़

क्या न्याय तेजी से मिलता है, सस्ता है तथा निष्पक्ष है ? —ये प्रश्न सामान्य रूप से न्यायपालिका के सामने आज जो चुनौती है, उसे स्पष्ट कर देते हैं । सबसे पहली चुनौती यह है कि उन लाखों-लाख लोगों को जो विश्वास और भरोसे के साथ अदालत के अहाते में जमा होते हैं तेजी से न्याय कैसे दिया जाए ? परित्यक्ता होने के आधार पर एक तीस वर्षीया महिला ने विवाह विच्छेद की मांग की । वह सफल हुई, मगर पारिवारिक अदालत नहीं है जो उसका मुकदमा द्रुतता के साथ, सहानुभूति-पूर्वक तथा समझ के साथ उसकी बातों को सुन सके । खास तौर पर पारिवारिक झगड़ों में परस्पर विरोधी हितवालों को फटकारना, मेल-मिलाप कराना तथा समन्वय कराना अदालत का मुख्य ध्येय होना चाहिए । मगर जहां पुराने मुकदमों के अंबार लगे हों, वहां हमारी अदालतों के पास इस तरह के उपयोगी कामों के लिए न तो समय ही है, न दिलचस्पी ही । और इसके लिए वे दोषी नहीं हैं । उनके काम का मूल्यांकन इस बात पर नहीं होता कि कितने टूटे हुए परिवारों को करीब लाने में उन्होंने मदद की बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने कितने फैसले सुनाए । अदालत में जहां विद्वान् पुरुष तथा महिला वकील कुशल वाक्चातुर्य से बाल की खाल उधेड़ते रहते हैं, अलग हुए परिवार तथा उनके अभागे बच्चे उन त्रासद दृश्य को चुपचाप देखते रहते हैं । इस तरह के मुकदमों में, कोई जरुरी नहीं कि महिला वकील भी अधिक समझदारी दिखाती हों ।

*प्रधान न्यायाधीध, सर्वोच्च न्यायालय

दूसरे ऐसे भी मुकदमें हैं जो कहानी से भी ज्यादा चकित करने वाले होते हैं । विचाराधीन कैदी जेलों में इतने लंबे अर्से से पड़े हुए हैं कि उनके अपराधी पाए जाने पर मिलने वाली सजा भी इस कैद से कहीं कम होती । वकीलों के पास स्थानीय आधार पर ऐसा कोई संगठन नहीं है जो इन मुकदमों की जांच तथा उनके निदान के लिए कदम उठा सके ? या वे लोग अपनी खूबसूरत वकालत में ही मग्न हैं ? शिक्षाविद् तथा समाज विज्ञानियों ने समाज द्वारा भुला दिए गए इन दुर्भाग्यशाली लोगों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । गरीबों के कल्याण के प्रति दिलचस्पी तथा उनसे प्यार से ही जनहित-मूलक मुकदमों की अवधारणा का विकास हुआ है । जनहितमूलक मुकदमों को बहुत प्रचार मिलता है मगर वह उनका उद्देश्य नहीं है । ना ही न्यायाधीशों के पत्रात्मक न्यायाधिकार लागू कराने का ही वह लक्ष्य है । शोषण तथा अन्याय की शिकायत करने वाले पत्र-टेलीग्रामों पर हम कार्यवाही करते हैं । यह दावा नहीं किया जा सकता है कि इस तरह से न्यायाधिकार लागू करने में कोई चोरगढ़ा नहीं है या इसमें कोई कमजोरी नहीं है । मगर जीवन की तरह कानून में भी संस्कार का सबसे कम असंतोषजनक तरीका ''परीक्षण और गलती'' प्रणाली है । मगर ध्यान रखना है कि परीक्षण बहुत लंबा न खिंचे तथा गलतियां बहुत अधिक न हों । मगर इसे ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा समाज जिस गहरी बीमारी से ग्रस्त है न्याय की नई पहुंच ने उसे सतह पर ला दिया है । प्राविधिक तथा कट्टर सोच-विचार के कारण परंपरागत रूप से जो न्याय से वंचित रहे उन्हें तुरंत तथा सस्ते में न्याय मुहैया कराने के लिए हस्तक्षेप करने की सीमित सीमा को बढ़ाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तृत मार्ग निकाला है । न्यायाधीशों ने कुछ सीमित हद तक विधायक की भूमिका ग्रहण की है, हालांकि अंतरिम रूप में ही है । यह कानून इधर की सुंदरतम उपलब्धि है । हमारी संवैधानिक योजना के अन्तर्गत राजनीति के निर्देशक सिद्धांत के महान तथा बढ़ते हुए महत्व के प्रति अदालत की सजगता को दर्शाती है । अदालत के एक हुकमनामें से निर्देशक सिद्धांत संभवतया लागू नहीं हो सकता, मगर वे शृंगार या अलंकार मात्र भी नहीं हैं । सामाजिक प्रतिबद्धता की चुनौती से जगकर सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के अंधेरे कोनों में रोशनी जलाते हुए दीन-हीन, उदास और असहायों की जिंदगी उम्मीद और सुख से भर दी है ।

हालांकि यह याद रखना चाहिए कि इस नई जमीन पर न्यायाधीश लोग सोच-समझ कर फूंक-फूंक कर कदम रख रहे हैं । अधिकार क्षेत्र की सीमा का विस्तार करते हुए तथा न्यायाधीशों की सीमा को बढ़ाते हुए न्यायाधीशों ने इस बात के लिए सावधानी बरती कि वे न्यायिक पुनरावलोकन की सीमा का अतिक्रमण न करें । जन अधिकारियों के काम का पुनरावलोकन करने का एक समझदार तथा विश्वसनीय नियंत्रण वांछित है । नियंत्रण, अलंकार नहीं है, न्यायिक संस्थाओं की साख को ऊंचा उठाती है ।

Copyrighted material

न्याय के रास्ते में पड़ी हुई तरह-तरह की कठिनाइयां क्या हैं ? और न्यायपालिका इन चुनौतियों का कैसे सामना करेगी ?

हमारी जीवन पद्धति में महान परिवर्तन, जनसंख्या का दबाव तथा कानूनों की बहुतायत ने एक अभूतपूर्व परिस्थिति की रचना की जिसने हमारी न्याय व्यवस्था पर अप्रत्याशित बोझ तथा बिल्कुल ही नयी रुकावटें पैदा की हैं । परिवर्तन की आवश्यकता बहुत साल पहले ही महसूस की गई थी, मगर किसी ने भी न्याय की चाल में रफ्तार या गुण में बेहतरी लाने का सुझाव नहीं दिया या कोई योग्य सुधार नहीं स्वीकारा । इस समस्या के प्रति खासकर हमारे न्यायपीठ तथा वकील समुदाय की यह दलील तथा रुख दुःखद है कि हम परंपरागत दबावों तथा प्रशिक्षण के शिकार हैं । हमने अपनी किस्मत को इसलिए स्वीकार कर लिया है कि चूंकि किसी को भी मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन करने की इच्छा और उत्साह नहीं है, इसीलिए जो मौजूद होती है वह बनी रहती है, भले ही वह अव्यवस्था हो । मानव प्रकृति परिवर्तन विरोधी है, जो कि उसकी अच्छी या बुरी परंपरा के गर्व से प्रकट होती है । वास्तव में, परंपरा के प्रति अंधी श्रद्धा व्यवस्था के संस्कार को अस्वीकार करने का बहाना बन जाता है । व्यक्ति यह सुखद भ्रांति का भाव पाल लेता है कि किस्मत ने जो कुछ भी दिया उसमें बेहतरी लाने की कोशिश धर्म-विरोधी है । यहां तक कि एक झोपड़पट्टी में रहने वाले को यह समझाना मुश्किल है कि जिस में वह रह रहा है वह नरक है । आमतौर पर, मानव प्रकृति यथास्थिति को कायम रखना पसंद करती है । यही बात है कि हमारे कानूनगो चाहे वे न्यायपीठ के हों या वकील समुदाय के, उन्हें महसूस करना होगा कि नागरिक जो हमारी न्याय-व्यवस्था की अपर्याप्तता से मोह मुक्त हो चुके हैं उनके धैर्य पर अब और अधिक दबाव नहीं डाल सकते ।

हमारी मौजूदा न्याय व्यवस्था के ढांचे के बारे में अक्सर तथा खुले आम क्रांतिकारी भावनाएं व्यक्त की जाती हैं कि इसमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए । मैं यह मानता हूं, हमारी न्याय व्यवस्था महज इस लिए उत्कृष्ट नहीं मानी जाएगी कि हमें वह उत्तराधिकार के तौर पर मिली है । तमाम उत्तराधिकार कीमती नहीं होते । मगर हमें उसे इसलिए नापसंद या खारिज भी नहीं करना है कि वह विदेशी शासकों से मिली है । जब तक हमें एक कीमती विकल्प न मिल जाए हमें विश्वसनीय तथा ईमानदारी से इसे बेहतर बनाने की कोशिश करनी चाहिए । मकान का मलबा बेचने का इश्तहार देने से पहले जहां तक संभव हो हमें उसकी संभावनाएं देख लेनी चाहिए । यह नहीं है कि कानून अपना विशिष्ट नतीजा पाने में पूरी तरह असफल हो गया है । अपने उद्देश्य में वह असफल नहीं हुआ है । मैं उम्मीद रखता हूं कि मौजूदा कानूनी ढांचे की संरचना में कानून को सामाजिक न्याय का कारगर हथियार बनाने का तौर-तरीका निकालना संभव है ।

आज न्यायपालिका की चुनौती लकड़ी इकट्ठी करने वाले, पानी खींचने वाले, कसाई, नानबाई तथा मोमबत्ती बनाने वालों की आशा-आकांक्षाओं की चुनौती है । कानून जहां इन आदमियों और औरतों को छूता है, उसे अपना काम बेहतर बनाना होगा । कार्य विधि जो कानून की नौकरानी है, उसे वर्ग-असमानता को बनाए रखने के लिए विकृत नहीं करना चाहिए । अक्सर अदालत ने समाज के तनाव को कम करने के बजाए उसे बढ़ाने के लिए हस्तक्षेप किया है । हमें अवश्य ही मानसिक रूप से इस सीधी सचाई को सीखने तथा समझने के लिए तैयार रहना पड़ेगा कि सुधार बिल्कुल सिरे से शुरु करना होगा, निचले सिरे से । यह एक सरल विश्वास है जो कि लापरवाही से व्यक्त किए जाते हैं कि निम्न अदालत में छोटी समस्याएं आती हैं, अतः उनका नीचा स्तर उन लोगों के लिए ठीक ही है । जब हम इसे कहते हैं, तब हम इस घरेलू सचाई को भूल जाते हैं कि व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक वर्ष बहुत महत्वपूर्ण होते हैं । उसी तरह प्रारंभिक जीवन के मुकदमे उसके मुकदमों का निर्माण काल है । निम्न अदालत, जहां साधारण मुकदमें होते हैं वहां के न्याय के परिवेश को विकसित करने के प्रति उचित ध्यान दिया जाना चाहिए ।

सरकार को आगे आना चाहिए तथा निम्न अदालत की समस्याओं पर शोध कराने के लिए उचित अनुदान देना चाहिए । स्तरों में गिरावट न्यायपालिका के प्रति बढ़ती हुई चुनौती है, सहायक न्यायपालिका की सेवाओं की स्थिति में बेहतरी लाकर संतोषजनक रूप से उसका मुकाबला किया जा सकता है ।

कानून जो एक छात्र पढ़ता है तथा कानून जो कार्यरत है, दोनों का फर्क न्याय का दूसरा नाम है । आम आदमी जब उसके संपर्क में आता है तो इस खाई को वह और बढ़ते हुए देखता है । हमें मौजूदा न्याय विधि के मूल्यांकन तथा मूल्य निर्धारण में ईमानदार तथा निष्कपट होना चाहिए तथा वर्तमान परंपरागत संस्थानों को हमारे समय की चुनौती का सामना करने के लिए पुनर्विन्यास में कल्पनाशील होना चाहिए ।

थोड़ा और पैसा तथा और अधिक न्यायाधीश हमारी समस्याओं का उचित समाधान नहीं है, हालांकि साथ ही बहुत अधिक न्यायाधीशों तथा पैसों की भी आवश्यकता है । प्राचीन न्याय प्रशासन व्यवस्था में आधुनिक प्रविधि के इस्तेमाल में असफलता से हमारी मुख्य समस्याएं पैदा होती हैं । समय स्वीकृत तरीकों के प्रति हमारी अंध

Copyrighted material

आसक्ति के कारण वास्तव में हमने ईमानदार गवाहों को अदालत से निर्वासित ही कर दिया है । ईमानदार गवाह, गवाह के कटघरे में पांव रखने से डरता है । चतुर वकील, उदासीन न्यायाधीश, जिसे बेलगाम छोड़ देते हैं, गवाहों को बेवकूफ बनाते हैं, और गवाह जितने सच्चे होते हैं उतने ही बेवकूफ नज़र आते हैं ।

आज बिल्कुल एक नए वर्ग के मुकदमे अदालत में आ रहे हैं । बीसवीं सदी की सामाजिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल ने व्यक्ति के जीवन में व्यापक परिवर्तन ला दिए हैं । आवागमन की सुविधाओं ने अपनी सहवर्ती समस्याओं के साथ एक गतिशील समाज का निर्माण किया है । गांव में जीवन धारण का साधन न होने या गांव का जीवन असुरक्षित होने की वजह से गांव के लोग शहर में भीड़ बढ़ा रहे हैं । सुरुचि संपन्न नगरवासी अपनी पत्नी तथा बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में चिंतित हैं न कि भूखे आदमी की रोटी के एक टुकड़े के लिए । वह उसका स्वागत करने को तैयार नहीं है । अमीर उसे गंदा और बेईमान के तौर पर देखता है । अदालत को इस सामाजिक चुनौती को स्वीकारना होगा तथा संविधान के समाजवादी लक्ष्य के प्रति आदर्शवादी प्रतिबद्धता की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करना होगा ।

अगर बढ़ती हुई आम अनास्था कानून की नींव को कुतर रही है तो उसका मुख्य कारण आम आदमी के साथ कानून की संवादहीनता है । बहुत सारे उदाहरणों में साधारण आदमी देखता है कि न्याय के प्रति उसकी उम्मीदें बार-बार झुठलाई गई हैं । व्यवहारिक निर्णय तथा कानूनी नतीजे में इस कमी की वजह से सम्मान में कमी आने लगती है, जो कानून, वकील तथा न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा को नीचा करती है ।

अंतिम विश्लेषण में अदालत के प्रति जनता की आस्था ही मुक्त जनता की स्वाधीनता के ताने-बाने को कायम रख सकती है । अतः अदालत का काम जनता में आस्था की समझ भरना है ताकि स्वाधीनता तथा मुक्ति बनी रहे । न्यायपालिका जिस चुनौती का सामना कर रही है उसे मैं इस रूप में देखता हूं । □

एक शांतिपूर्ण क्रांति की दिशा में

वी० आर० कृष्ण अय्यर

जब राजनीतिक रूप से भारत मुक्त हो गया तथा भारतीयों ने नियति से साक्षात्कार कर लिया, तो स्वतंत्रता की सामाजिक, राजनीतिक अनिवार्यताओं को हमारे मूलभूत मानवतावादी संविधान में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति मिल । इसमें हमारे प्रभुसत्ता संपन्न, धर्मनिरपेक्ष समाजवादी जनतंत्र में हर नागरिक को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनितिक न्याय के मौलिक जन्मसिद्ध अधिकार मुहैया कराने के संकल्प को रेखांकित किया गया । न्याय एक गंभीर अवधारणा है जिसकी कोख में स्वतंत्रता, समानता तथा मानव गरिमा के महान मूल्य पलते हैं । राज से स्वराज का मतलब जनमुखी रूपांतरण तथा बढ़ती हुई उम्मीदों की एक क्रांति थी, लाखों लाख आम जनता के लिए खून, मेहनत, पसीना तथा आंसू का खात्मा था । अदने से अदने भारतीय के पास अब मानवाधिकार, आर्थिक न्याय तथा शोषक व्यवस्था से मुक्ति की सनद थी । एक ठहरे हुए मुल्क की विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के लिए एक पुराने गरीब सामंती-उपनिवेशी ढांचे के कठमुल्लापन व प्रतिगामी ताकतों से पीड़ित समाज के रूपांतरण तथा इसकी जनता के लिए भौतिक राहत एक बहुत बड़ा काम है ।

यहां हम न्याय के उस बीज सिद्धांत की ओर ध्यान दें जिसे हमारे संविधान की प्रस्तावना में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । न्याय के इंद्रधनुषी रंग हैं, मगर भारतीय स्थिति की द्वंद्वात्मकता का आदर करते हुए अपने लाखों लाख मानव सदस्यों को मानवाधिकार हासिल करने के लिए उसे आगे बढ़ाना है । आधे से अधिक भारतीय जनता गरीबी की रेखा के नीचे है और वह जीने के लिए आवश्यक न्यूनतम जरूरतों से भी वंचित हैं । मानव गरिमा के कई आवश्यक तत्व हैं परंतु जिन अमानवीय स्थितियों में हमारे दीन तथा हारे हुए लोगों को जीना पड़ता है, वह व्यक्तित्व को नकारती है । जीवन और स्वतंत्रता तीसरे खंड के अंतर्गत संजोया गया मूल्य है । राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त (भाग चार) में कमजोर वर्ग के भारतीयों के कल्याण का उत्तरदायित्व राज्य पर डाला गया है । राज्य के अभिशासन में वे मौलिक अधिकार है । सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हर नागरिक चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक स्थिति के नीचे से नीचे या ऊंचे से ऊंचे किसी भी स्तर पर हो, इन अधिकारों का हकदार है । हमारा संविधान शब्दाडंबर नहीं बल्कि अधिकारों का विश्वसनीय घोषणापत्र है । इसके आधार कानून के समाजवादी नियम हैं । जब लाखों लोग वंचित और शोषित हैं उस समय समाज के साधारण सदस्यों को सामाजिक न्याय महज एक सक्रिय, संवेदनशील ईमानदार, निडर व शक्तिशाली न्यायिक व्यवस्था से ही मिल सकता है । वास्तव में हमारे संस्थापकों ने न्यायपालिका की कल्पना संवैधानिक क्रांति की बांह के तौर पर की थी जो उस नयी समाज व्यवस्था की देखभाल का काम करेगी जहां छोटे से छोटे व्यक्ति का ख्याल रखा जाएगा ।

*सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश

लाखों जनता अब संवैधानिक न्याय के लक्ष्य के तौर पर उभरी है, जबकि विक्टोरियन खुशहाल दिनों में लखपति वर्ग के लोग ही अदालती प्रक्रिया के प्रिय पात्र थे । सर्वहारा वर्ग के खिलाफ होने के स्थान पर उसके प्रति सरोकार महसूस करने की प्रवृत्ति एक नई शुरुआत है जो कि संस्थागत निष्ठा की मांग करती है । अतः महान् चुनौती है कि मानवीय मूल्य जो संविधान में निश्चित किए गए हैं उसे कार्यान्वित किया जाए, अदालत के प्रति यह एक पुकार है कि जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को सामयिक बनाए तथा समाज की उभरती हुई आकांक्षाओं की जरुरतों की पूर्ति के लिए पुराने सांचे की प्रणाली को अवश्य बदलें । कोई भी क्रांति, यहां तक कि संविधान द्वारा स्वीकृत क्रांति भी क्रांतिकारी सिद्धांत के बगैर सफल नहीं हो सकती । क्रांतिकारी कार्यकर्ता, क्रांतिकारी औजार तथा रणकौशल हर समाज की विशिष्ट स्थिति की उपज होती है । यह द्वंद्वात्मक अभिगत हर समाज की

Copyrighted material

अदालतों का स्वरूप क्या हो और उसका अधिकार क्षेत्र कहां तक हो इसके संबंध में अदालतों का गठन किया जाय। पारिवारिक विधि मंत्रालय और विधि आयोग सामाजिक कार्यकर्ताओं और महिला संगठनों के प्रतिनिधियों तथा विधि वेत्ताओं से विचार-विमर्श कर रहे हैं। जब इसकी स्पष्ट रूप-रेखा तैयार हो जाएगी तब पारिवारिक अदालतों के गठन के लिए संसद में विधिवत विधेयक प्रस्तुत किया जाएगा।

वैसे पारिवारिक अदालतें बनाने का प्रस्ताव कोई नया नहीं है। अनेक देशों में पारिवारिक अदालतें सफलतापूर्वक चल रही हैं। उनके कामकाज के अध्ययन से पता चलता है कि उनसे समाज को काफी लाभ पहुंचा है। 1899 में सर्व प्रथम अमरीका में बाल अपराधों से संबंधित मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालत गठित की गई थीं। 1910 में इसके स्वरूप का विस्तार हुआ और "पारिवारिक कोर्ट अदालत" के नाम से न्यूयार्क प्रांत में पारिवारिक अदालत का गठन हुआ। धीरे-धीरे पूरे अमरीका में इस तरह की अदालतें बन गईं। जापान में पारिवारिक अदालतों का गठन 1948 में एक अधिनियम द्वारा हुआ। 1951 में दीवानी के और भी मामले इस अदालत की सीमा में रख दिए गए। 1975 में आस्ट्रेलिया में पारिवारिक अदालतों के बारे में अधिनियम बना और वहां पारिवारिक अदालतें सफलता पूर्वक चल रही हैं।

हमारे देश में पारिवारिक अदालतों के स्वरूप तथा इस संबंध में अन्य पहलुओं के बारे में लोगों की राय है कि ऐसी अदालतों को वैधानिक मान्यता हो, उनका स्तर जिला न्यायालय के समकक्ष हो और अदालत में जूरी-प्रणाली अपनाई जाए जिसमें न्यायाधीश के अलावा सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी शामिल किया जाना चाहिए।

ऐसी अदालतों में पूरी तरह से अनौपचारिक वातावरण रखा जाए जिससे दोनों पक्ष मुकदमा जीतने या मानसिकता से अलग रहकर समस्या का सच्चा हल खोजने में अधिक रुचि रख सकें और बिना किसी संकोच के ईमानदारी के साथ वास्तविक स्थिति प्रस्तुत कर सकें। जूरी पक्ष को चाहिए कि वह दोनों पक्षों के बीच उत्पन्न विवाद की गहराई में जाकर मामले के कारणों का पता लगाए और हर संभव प्रयास करे कि समझौता हो जाय। ये मामले चाहे तलाक के हों या दहेज से संबंधित कलह के। महिला स्वयं सेवी संगठनों के प्रमुखों से बातचीत करने पर पता चला है कि वे बलात्कार के मामले को भी इसी अदालत के अधिकार क्षेत्र में रखने के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि सामान्य अदालत में कानूनी दाव पेंच तथा औरतों द्वारा अपनी बात संकोच वश पूरी तरह न कह सकने और वकीलों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न दे पाने के कारण अपराधी छूट जाते हैं। उत्तराधिकार, बच्चों को गोद लेने से संबंधित मामले तथा तलाक के बाद पत्नी के लिए खर्चा बांधने के प्रश्नों को भी इन्हीं पारिवारिक अदालतों के अधिकार क्षेत्र में रखा जाना चाहिए क्योंकि ये सभी मामले परिवार से संबंधित हैं।

पारिवारिक अदालतों को यह करना होगा कि वह दोनों पक्षों को पर्याप्त समय देकर पुनः विचार करने का अवसर दे और विभिन्न उचित माध्यमों से वास्तविक कारणों की खोज करके कम समय में समस्या का समाधान ढूंढ़े। मुख्य प्रश्न निर्णय देने का नहीं, बल्कि समस्या के समाधान का है।

वैसे हमारे देश में पारिवारिक अदालतों का मामला अभी शैशवावस्था में है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही इन अदालतो के गठन की दिशा में कार्रवाई शुरू हो जायेगी और अनेक प्रकार की पारिवारिक समस्याओं से संबंधित मुकदमों की जल्दी ही इनमें सुनवाई हो सकेगी। यह उपाय निश्चय ही समाज को और सुखी बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

—समाचार सेवा प्रभाग

व्यंग्य

बहुत पछताए टेलीविजन खरीद कर

अख्तर जहां

प्यारी बहनों, टेलीविजन वाली ये मुसीबत तो उस वक्त भी खड़ी मुंह चिढ़ा रही थी जब मेरे कल के महबूब और आज के पतिदेव ने मुझे अपना जीवन साथी बनाने से पहले ही एलान कर दिया था कि ढेर सारे माले गनीमत के साथ टेलीविजन का मेरे साथ आना बहुत जरुरी है वरना सजाय रखो अपनी गुड़िया रानी को ड्योढ़ी के ताक पर। उस वक्त ही मैंने सोच लिया था कि टेलीविजन शायद कोई बला है जो हर दुल्हन के साथ लगी रहती है या कोई डंडा है जो दूल्हे को मिलना चाहिए ताकि उसकी बरकत से आइंदा भी मैके वालों के यहां से माल का कंसाइनमेंट जारी रहे। यह अलग बात है कि रेलवे पार्सल की तरह यह कंसाइनमेंट उनको न मिल सके। हां, मैं जरुर छक-छक करती उन तक पहुंच गई। क्योंकि कुछ भले लोग तो समाज में आज भी हैं और हमारे यह मियां उनके बहकावे में आ गए और बगैर टेलीविजन नामी कलमुंही के मुझे कबूल करने पर तैयार हो गए। कलमुंही इसलिए कह रही हूं कि उस वक्त तो किसी सूरत यह बला टल गई थी लेकिन अब गले का ढोल बन कर झूल रही है। बजाऊं तब भी मुश्किल न बजाऊं तब भी मुश्किल। गरज इसके कारण जान बेचारी हल्कान और हम बेचारे परेशान।

आप तो जानती हैं जो बदा होता है होकर ही रहता है। हम नए-नए एक से दो हुए थे मन में तरह-तरह की लगन और दिल में हजार तरह के ख्वाब थे आमदनी तो क्या अच्छी होती थी जरुर अच्छा था। सुना था कौवा चला हंस की चाल खुद अपनी चाल भूल गया सो हम लोगों की हालत हुई। हर तरफ टेलीविजन का शोर था उसी की खूबियों के चर्चे थे हर कोई अपनी हैसियत का परिचय टेलीविजन दिखला कर दे रहा था मेरा दिल मचल गया कि घर में टेलीविजन आना ही चाहिए वरना लोग-बाग हंसेंगे। फिर हमारी हैसियत डाउटफुल होकर रह जाएगी। घर में ले देकर निगोड़ी ट्रांजिस्टर ही हर वक्त डकारती

Copyrighted material

रहती यह वही ट्रांजिस्टर थी जो मैं अपने मैके से टेलीविजन के बदले लेकर आई थी । पहले तो वह खूब भाती थी अब उसे सौतापा होता जा रहा था । बार-बार मियां को टोकती टेलीविजन खरीद लो न घर सूना-सूना-सा लग रहा है । एक दिन तंग आकर उन्होंने कह ही दिया कि "इसीलिए तो मैंने टेलीविजन की मांग की थी न ।" उस ताने पर मैंने वही पुराना हरबा अजमाया । यानी दो-चार बूंद आंखों से टपका दिए यह और बात थी कि उस दिन हमारी आंख आई हुई थीं । मियां मिले हैं नरम दिल बुद्धू टाइप । मेरा रोना देख कर वायदा कर लिया और वह दिन जानो ईद का दिन हो गया जिस दिन इस भानमती के पिटारे को सजा-बना कर सिंहासन पर बिराजमान किया गया । उस दिन मैं पूरे पड़ोस को अपने यहां टेलीविजन देखने की दावत दे आई थी । सभी टेलीविजन देखने आए । और निहायत करोंफर से टेलीविजन देखते रहे पर मैं देख न पाई कि मेहमानों की हर पुकार पर दरवाजे तक लपकती और वे बैठते नहीं कि दरवाजा खटखटाने की आवाज फिर मुझे ड्योढ़ी पर पहुंचा देती । किसी तरह यह दिन कटा । दूसरे दिन पता चला कि घर के एक दो सामान गायब हैं । मियां की नई चप्पल पुरानी हो गई और मेरा सैंडिल बदल कर सेकेंड हैंड हो चुका है । अपने खोए समान की तलाश में लोगों के आने का तांता बना था, कोई मुन्नी अपनी जूती को रो रही थी तो कोई मुन्ना अपना जूता ढूंढ़ रहा था ।

खैर किसी सूरत यह हादसा झेल ले गई लेकिन जब दिन खराब आते हैं तो जली मछली भी जल में कूद जाती है । हुआ यह कि कुछ ही दिनों बाद पता चला कि मियां के तनख्वाह के एडिसनल एलाउंस जिन पर हम नौकरी पेशा वालों के बहुत-से ख्वाब सिर उठा-उठा कर ताक-झांक करते हैं, बुरी तरह सफर कर रहे हैं बल्कि सब के सब टेलीविजन के नजर हो रहे हैं और हमारा घरेलू बजट घड़ी के पेंडुलम की तरह डांवाडोल हो रहा है क्योंकि जो दोस्त-एहबाब कभी राम-सलाम तक न कहते थे अब खैरियत पूछने के बहाने और दिल में टेलीविजन का लुत्फ लेने घर पर आ धमकते और घंटों टेलीविजन देखकर एवं दो-चार टकों का नाश्ता करके ही टलते । इसके अलावा हर इतवार और छुट्टी का दिन मेहमानों और टेलीविजन के शौकीन लोगों के स्वागत में ही बीत जाते ।

यह तो झेलना था ही कि उसी दौरान दादी अम्मा को पोते के ख्वाहिश ने गुदगुदाया और हमारी सब फेमिली प्लानिंग धरी रह गई । मुन्ने की शक्ल में दादी अम्मा को पोता मिल गया और मुझको सब्जाजार होने का मौका, मियां को तो फरजन्द अर्जुमन्द मिलना ही था और उनको मिल गया । बात यहीं खत्म नहीं होती मुन्ने मियां बड़े तो जरुर हो गए पर वह स्कूल जाने के बजाए घर रहना ही पसन्द करते । शाम को पढ़ने के बजाए टेलीविजन देखना उनको बहुत पसन्द था और बड़ी शान से कहा करते, अजी अम्मा । टेलीविजन के जरिए बहुत अच्छी ट्यूशन हो जाया करती है और ज्ञान की सारी बातें यही टेलीविजन ही बतला देती है भला स्कूल जाकर क्या फायदा । टीचरों को कहां आती है इतनी ज्ञान की बातें ? लो बहनों अब स्कूल कालेज बन्द ही हो जाएंगे कि टेलीविजन जैसा रिंग मास्टर घर ही में मौजूद है ।

नींद तो वैसे भी कुछ दिनों पहले आधी रात के बाद आती थी अब तो आधी रात के बाद रतजगा हुआ करेगा । सुना है कि अब आधी रात तक टेलीविजन हम पर हंसा करेगी और टेलीविजन के अदाकार हमको आधी रात तक अपने करतब दिखलाया करेंगे । फिर भी बात यहीं खत्म नहीं होती है मुन्ने के बाद दादी अम्मा का दिल फिर बड़ी जोर से गुदगुदाया और यह गुदगुदी उन्हें एक लक्ष्मी की पुकार दे रही थी । फेमिली प्लानिंग फिर फेल हो गई । झमझमाती मोहनी सूरत एक मुन्नी आ धमकी और अब तो वह बड़ी भी हो चली है। एक धक्का और लगा हम लोगों को । टेलीविजन पर न जाने कहां के मूर्तियों को सजा-बना कर बुलवा लिया जाता है । अब मुन्नी जान मचल रही हैं कि वह तो टेलीविजन पर कल ऐपियर होने वाली की तरह लिबास जेबतन करेंगी और उसी दर्जी से अपने कपड़े सिलवाएंगी जिसका कल खूबसूरत-सा इश्तहार आया था टेलीविजन पर । उसके लक्षण तो मेरे ही जैसे होने ही चाहिएं, उसकी आंख से टपके दो-चार कतरों से कलेजा दहल गया । यह और बात है कि मियां के पाकेट पर एक और छापा पड़ा । मियां तो खैर से मुन्नी के पापा ही ठहरे तिलमिलाए तो जरुर लेकिन टेलीविजन रखने की शान की खातिर सब झेल गए ।

नऊजबिल्लाह टेलीविजन कोई अल्लाह मियां तो हैं नहीं कि एक मर्तबा बने तो कभी बिगड़ेंगे ही नहीं सो यह सालिड स्टेट टेलीविजन अक्सर लिक्वीडेट हो जाया करती है और दौड़ना पड़ता है टेलीविजन डीलर की दुकान पर । वहां पता चलता है अजी नाम रजिस्टर्ड करवा जाइए मैकेनिक खुद घर पर पहुंच जाएगा । लेकिन ये मैकेनिक लोग भी क्या खूब काइयां होते हैं अजी अभी आया, अजी आज आया में हफ्तों टाल जाते हैं तब कहीं दर्शन मिलते हैं उनके और जब दर्शन हुए तो बतौर परसादी अजीबो-गरीब औजारों और पुर्जों की एक लिस्ट थमाते हुए कहते हैं कि बहन जी ये सामान मंगवा लीजिए । ये सब जरुरी हैं वरना रुठी रहने दीजिए टेलीविजन देवी को । अगर किसी सूरत जान पर जब्र करके आपने टेलीविजन ठीक करवा ही लिया तो पहले ही पता चलता है कि आपने लगाया था चैनल ए और चैनेल बी, सुनना चाहती हैं उर्दू की गजलें और आ रही हैं बंगाली में भैरवी राग, हिन्दी के भक्ति भजन सुन रहीं थीं कि अब पल में कानों को सुनाई देता है बलम परदेशिया पिया निरमोहिया के मधुर गीत । कोई अच्छी शक्ल से आप खुश हो रही हैं कि पता चला कि किसी माहिर चित्रकार के हाथों उन पर जगमगाती लकीरें पोती जा रही हैं इसे टेलीविजन वालों ने ओवरलैपिंग का खूबसूरत नाम दे रखा है । एक दिन तंग आकर मैंने कहा एन्टीना तो और ऊपर होना ही चाहिए । मुंह बिचकाकर मियां ने कुतुब मिनार जैसा ऊंचा और पसली की हड्डियों जैसा टेढ़ा-मेढ़ा एन्टीना लगवा दिया । उनको क्या मालूम था कि महल्ले के कबूतरबाज उसे छाता समझ कर अपने कबूतर उस पर बैठवाएंगे । कभी पतंग फंस रही है तो कभी उस पर कोई चील टकरा रही है और कल जो आंधी आई तो तारों का यह कुतुब मीनार अड़ा-अड़ा धड़म आसमान से गिरा अब तक खजूर में अटका है और इधर टेलीविजन बेचारी शोक में पड़ी गुमसुम है । अब मैं पछता रही हूं न टेलीविजन खरीदते और न ये मुसीबत के दिन देखने पड़ते पर अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत । □

—आकाशवाणी, गोरखपुर